स्वर्ण सीढ़ी से उतरते शिशुगण

सुमार सिंह सावियान

अनुवाद : सन्तोष हसन

सम्पादन : रमणिका गुप्ता

'स्वर्ण-सीढ़ी से उतरते शिशु' पूर्वोत्तर भारत की खासी जनजाति की लोककथाओं का संकलन है, जिसमें इस जनजाति का इतिहास, मान्यताएँ और जन-जीवन की झलक देने वाली कई कथाएँ सम्मिलित हैं। ये कथाएँ जहाँ एक ओर अपनी संस्कृति और अस्तित्व को बचाए और बनाए रखने के लिए किए गए इनके प्रयासों, इनके शौर्य और पराक्रम, इनकी सोच और सरोकारों तथा इनकी मान्यताओं और कठिनाइयों का भी परिचय देती हैं, वहीं वे इनके प्रकृति प्रेम, पर्यावरण के प्रति चिन्ता और पशु-पक्षियों के साथ सह-अस्तित्व की भावना को भी बखूबी उजागर करती हैं।

सृष्टि के आदिकाल की लोककथाएँ और मिथक मनुष्य की जिज्ञासा, कौतूहल व कल्पना के मेल से गढ़े होंगे आदिम मनुष्य ने। स्वाभाविक है मनुष्य अपने आदिम काल में—अपने व प्रकृति के होने पर विस्मित होता होगा और संभवतः वह अपने व प्रकृति के रिश्तों पर तरह-तरह के अनुमान लगाने लगा था—प्रश्न पूछने लगा था। उत्तर खोजने की फिराक में कल्पना भी करता था। जो सोचता था—प्रकृति के चमत्कार व शक्ति उसे अवाक् कर देते थे। उसका अपना अस्तित्व, पूरी प्रकृति, आकाश-ब्रह्माण्ड—सभी उसके मन में कौतूहल जगाते थे। तब उसने गढ़े होंगे ये मिथक, लोककथाएँ और ये लोकगीत बनकर उसकी वाणी से फूटे होंगे। इस संग्रह की 'हिन्युट्रिप के चमत्कार' से जुड़ी कथा में भी वृक्ष और पक्षी जैसे प्राकृतिक परिवेश की उपस्थिति अनिवार्य रही होगी।

—रमणिका गुप्ता (सम्पादकीय से)

अनुक्रम

सम्पादकीय : रमणिका गुप्ता 7
भूमिका : धर्मचन्द्र विद्यालंकार 13

दर्शन

का हॉक : सत्य 15
धनुर्विद्या की दार्शनिकता 17

मिथक, विश्वास, आस्थाएँ एवं लोककथाएँ

ऊ लुम सोहफेङ बेन्नग (तीर्थयात्रा का मिथ) 21
पवित्र मुर्गा 28
शिलाङ के भगवान का मिथक 30
नारटियाङ : का ली डोख़ा की लोक-कथा 31
नारटियाङ स्तम्भों की कहानी 33
री हिन्यूट्रेप के चमत्कार 35
सिसकियाँ भरता वृक्ष 37
रोती, क्रन्दन करती नदी 38
चीते के रूप में मनुष्य 39
सियार लापलाङ का शोक-गीत 43
बाँसुरी की धुन से उपजी एक प्रेम कथा 44

तीन स्मरणीय स्तम्भ युग

राजा तिरोत सिंह का विद्रोह 49
जयन्तिया के नागरिकों का विद्रोह (1835) 55
कियाङ नाङबाह का विद्रोह (1861) 56

इतिहास

राजधानी शिलाङ का इतिहास व मिथ 59
नारटियाङ के मोनोलिथ स्मृतिचिह्न हैं 64

संस्कृति

नाङक्रेम नृत्य, अनुष्ठान एवं परम्पराएँ 68
संगीत की गूँज 73
सोने-चाँदी के आभूषण 79

प्राकृतिक अचम्भे

पवित्र वनों की भव्यता का रहस्य 83
भौगोलिक परिवर्तन की साक्षी : भव्य गुफाएँ 86
जुरेसिक गलियारा 90

संपादकीय टिप्पणियाँ 92

स्वर्ग-सीढ़ी से उतरते शिशु

सम्राट अशोक ने जब बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया तब ब्राह्मणों में खलबली मची। उन्हें सपने में भी यह गवारा नहीं था कि थोड़े से कर्मकाण्डों के बदले लगभग मुफ्त में ही उनका भरण-पोषण करनेवाला कोई सम्राट उनके पेट पर लात मारते हुए, उनके चंगुल से इतनी दूर चला जाए कि वे न तो उसे वापस ला सकें और न ही उससे प्रायश्चित करवा सकें। सम्राट पर कोई ज़ोर तो चलना नहीं था, सो उन्होंने अपना गुस्सा निकाला सम्राट अशोक को बौद्धों की ओर से मिली उपाधि 'देवानांप्रिय' पर। संस्कृत शब्दकोष में 'देवानांप्रिय' का अर्थ लिख दिया 'मूर्ख', जबकि संस्कृत के इन शब्दों का स्पष्ट अर्थ ध्वनित होता है—देवताओं को प्रिय। इससे ब्राह्मणों का गुस्सा तो बहुत हद तक शान्त हुआ होगा, लेकिन इससे न तो उनका प्रयोजन सफल हुआ और न ही भविष्य में किसी और के बौद्ध होने का रास्ता बन्द हुआ। तब ब्राह्मणों ने बड़ी चतुराई से यह आभास देने के लिए कि किसी के बौद्ध हो जाने से भी उसका हिन्दुत्व कहीं नहीं जायेगा, चूंकि स्वयं बुद्ध ही हिन्दुओं के एक अवतार हैं—स्वयं बुद्ध को ही अपने दस ईश्वरीय अवतारों में से एक घोषित कर दिया। बहुत सम्भव है कि निकट भविष्य में वह दिन भी आए, जब बाबा साहेब अम्बेडकर को भी ये ब्राह्मण हिन्दुओं के अवतारों की कतार में शामिल कर लें।

किसी को भयवश तो किसी को लोभवश अपने धर्म में मिला लेना अथवा धर्म से बाहर कर देना, अपनी विद्वता के मद में चूर हिन्दू धर्म के स्वयम्भू प्रवक्ता ब्राह्मणों का शगल रहा है। ऐसा भी नहीं है कि सम्राट अशोक ही उनके इस एकपक्षीय निर्णय के इकलौते शिकार बने हों। उनसे बहुत पहले और उनके बाद यही सब हुआ है—पूर्वोत्तर के मेघालय राज्य की जनजाति खासी के साथ, जो आदिवासियों के आस्ट्रिक एशियन समूह से सम्बन्ध रखती है। मनुस्मृति जैसे ब्राह्मण ग्रन्थ ने इसी खासी जाति को क्षत्रियों से बनी जाति घोषित कर दिया था। मनुस्मृति 30-40 में स्पष्ट

उल्लेख है : 'शनकैस्तुक्रिया लोपादिमा क्षत्रिय आक्ताः। वर्षलाव गता लोके ब्राह्मणामदर्भनात।' ऐसा लगता है कि वैदिक कर्मकाण्ड और सन्ध्या-वन्दन की शुरुआत में उपासक व्यक्ति तीन बार जल से जो आचमन करता है, संभवतः उन्होंने वह आर्य पुरोहितों ने खासी कबीलों से ही सीखा होगा। बाद में जब ब्राह्मणों को ऐसा आभास हुआ कि खासी बौद्ध धर्म अपनाने की ओर उन्मुख हैं और वैदिक कर्मकाण्ड से विमुख हो रहे हैं, तो उन्हें क्षत्रिय से निषाद घोषित करने में भी उन्हें न संकोच हुआ, ना ही हिचकिचाहट। कालान्तर में जब अंग्रेज़ों ने यह व्यवस्था की, कि जनगणना के आधार पर जन-प्रतिनिधियों का चयन किया जाएगा, तब हिन्दुओं के तत्कालीन मसीहाओं ने फिर से खासी कबीलों को हिन्दू घोषित करने में क्षण भर भी नहीं लगाया! यह दीगर बात है कि खासी न हिन्दू थे, न बौद्ध और न ही ईसाई। वे इनमें से कुछ नहीं है और न ही भविष्य में होने का इरादा रखते हैं। आज भी अधिकांश लोग अपनी खासी आस्थाओं को ही मानते हैं। ईसाई बनने वाले खासियों ने भी न अपनी जीवनशैली बदली—न ही मातृसत्ता की परम्परा छोड़ी न ही संस्कृति।

बहरहाल, आदिम या आदिवासी जनजातियों या कबीलों में किसी ईश्वर के लिए कोई स्थान है ही नहीं। ये प्रकृति-पूजक समाज हैं, जो अपने पूर्वजों को ही अपना आराध्य मानते हैं। इनके न कोई मन्दिर होते हैं और न ही गिरिजाघर। हाँ, ये प्रकृति प्रदत्त और मनुष्य से इतर सूर्य, चन्द्र, वर्षा, आग, वनस्पति का अत्यधिक आभार मानते हैं चूंकि इनका जीवन सरल और सहज बनाने में उन सबकी महती भूमिका होती है। इसलिए ये उत्साह-पूर्वक इनका आभार प्रकट करने में ज़रा भी संकोच नहीं दिखाते। इनके दर्शन में चन्द्रमा और सूर्य भाई-बहन हैं। सूर्य को ये स्त्री मानते हैं।

'स्वर्ण-सीढ़ी से उतरते शिशु' पूर्वोत्तर भारत की खासी जनजाति की लोककथाओं का संकलन है, जिसमें इस जनजाति का इतिहास, मान्यताएँ और जन-जीवन की झलक देने वाली कई कथाएँ सम्मिलित हैं। ये कथाएँ जहाँ एक ओर अपनी संस्कृति और अस्तित्व को बचाए और बनाए रखने के लिए किए गए इनके प्रयासों, इनके शौर्य और पराक्रम, इनकी सोच और सरोकारों तथा इनकी मान्यताओं और कठिनाइयों का भी परिचय देती हैं, वहीं वे इनके प्रकृति प्रेम, पर्यावरण के प्रति चिन्ता और पशु-पक्षियों के साथ

सह-अस्तित्व की भावना को भी बखूबी उजागर करती हैं।

सृष्टि के आदिकाल की लोककथाएँ और मिथक मनुष्य की जिज्ञासा, कौतूहल व कल्पना के मेल से गढ़े होंगे आदिम मनुष्य ने।। स्वाभाविक है मनुष्य अपने आदिम काल में—अपने व प्रकृति के होने पर विस्मित होता होगा और संभवतः वह अपने व प्रकृति के रिश्तों पर तरह-तरह के अनुमान लगाने लगा था—प्रश्न पूछने लगा था। उत्तर खोजने की फिराक में कल्पना भी करता था। जो सोचता था—प्रकृति के चमत्कार व शक्ति उसे अवाक् कर देते थे। उसका अपना अस्तित्व, पूरी प्रकृति, आकाश-ब्रह्माण्ड—सभी उसके मन में कौतूहल जगाते थे। तब उसने गढ़े होंगे ये मिथक, लोककथाएँ और ये लोकगीत बनकर उसकी वाणी से फूटे होंगे। इस संग्रह की 'हिन्युट्रिप के चमत्कार' से जुड़ी कथा में भी वृक्ष और पक्षी जैसे प्राकृतिक परिवेश की उपस्थिति अनिवार्य रही होगी।

ऐसा माना जाता है कि 'खासी हिल्स' का पुराना नाम 'मोन खमेर' रहा होगा। ये लोग मध्य एशिया से यहाँ आए होंगे। प्रागैतिहासिक काल में वर्तमान उज्बेकिस्तान को 'खमेर या ख्वारिज्म' ही कहा जाता था। यहाँ की सभ्यता सिन्धु घाटी सभ्यता से पहले की मानी जाती है, जिसके सर्जक यही खासी या खासी आस्ट्रिक लोग थे। इस संग्रह की 'नारटियाङ के मोनोलिथ' स्मृतिचिह्नों से जुड़ी कथा इसी ओर संकेत करती है। ये स्तम्भ खासी जनजाति के पूर्वजों की समाधियाँ भी हो सकते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार कैस्पियन सागर तट पर स्टैपी के मैदानों में भी ऐसी पाँच हजार साल पुरानी कुरयन सभ्यता की समाधियाँ मिली हैं। बहुत सम्भव है इनका कोई न कोई सम्बन्ध उनसे रहा हो। खैर...

तीर मानव जाति के आहार-संचयन अथवा आखेटक अवस्था का आदिम अस्त्र है और तीर-कला उसका व्यवस्थित रूप। इसी के बल पर मनुष्य ने जहाँ पशु-पक्षियों का शिकार करके अपना अस्तित्व बचाए रखा, वहीं बाण-धारक योद्धाओं की सेना संगठित करके, उसने अपनी स्वतन्त्रता की भी रक्षा की। खासी जनजाति ने युद्ध कला-कौशल के क्षेत्र में किस प्रकार पाषाण कला की युद्ध कला से आगे बढ़कर, बाण-विद्या का विकास किया, यह धनुर्विद्या की दार्शनिकता वाले प्रसंग से पता चलता है। एक तरह से इन आदिवासियों का इतिहास, मनुष्य जाति का ही पूरा इतिहास है। इन कहानियों के माध्यम से हम मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का भी परिचय पाते हैं।

अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए खासी जनजाति ने सुदीर्घ समय तक सशक्त संघर्ष किया है। औपनिवेशिक शासन सत्ता ने उनसे मित्रता का ढोंग रच कर उनकी स्वतन्त्रता और स्वत्व का क्षरण और हरण किया था। इसे उजागर करता है 'तीन स्मरणीय युगों' का लोमहर्षक विवरण। अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित होने के पहले उस क्षेत्र में खासी-पनार और जैन्तिया जनजातियों के अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य कायम थे, जो उनके स्वतन्त्र अस्तित्व की पहचान थे। अंग्रेजी राज ने उनकी स्वतन्त्रता छीन कर, उनकी वह सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान मिटा दी। भारतीय इतिहासकारों ने किस प्रकार आदिवासी संघर्षों व बलिदानों के इतिहास को नजरन्दाज़ किया—इस पुस्तक में वर्णित इनकी वीरता का यह ऐतिहासिक अध्याय, इसकी ओर भी हमारा ध्यान खींचता है। नंगबाह या तिरोतसिंह का नाम हमारे इतिहास में आज भी दर्ज नहीं है। बाकी भारतवासी इन सबसे अनजान है।

वृक्षों को काटना आज भी आदिवासी संस्कृति में पाप माना जाता है। इस संग्रह की 'रोते हुए वृक्ष की कहानी' इसी ओर संकेत करती है। हरियाणा में भी पेड़ क़ाटना पाप माना जाता है। संभवतः यह प्रथा भी प्राचीन आदिवासी संस्कृति का अवशेष हो। दूसरी ओर 'चीता-मानव की कहानी' जादुई यथार्थवाद पर आधारित है, जिसमें पशु, मनुष्यों और मनुष्य, पशुओं की तरह कार्य-कलाप करते दिखाए गए हैं।

खेल या नाच-गान के दौरान किसी खिलाड़ी का या स्वयं का उत्साहवर्धन करते हुए, उसी में लीन हो जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। तब खिलाड़ी अथवा उसके प्रोत्साहक के मुँह से अनायास एक स्वर-लहरी फूटने लगती है। इस संग्रह के 'संगीत की गूँज' प्रकरण में खासी जनों का 'होई-क्यू, होय-क्यू' जैसा उच्चारण करते हुए वर्णन सम्भवतः उसी धुन और ध्वनि की ओर संकेत करता है। मैदानी क्षेत्रों में भी किसान या मजदूर अपनी क्षमता से अधिक श्रम करने के दौरान 'होइश्या-होइश्या' बोलते हैं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि किसान-मजदूर जो होइश्या-होइश्या बोलते हैं, वह अंग्रेजी राज में ईसाइयत को जन-सामान्य के कण्ठ में जगह दिलवाने के लिए इनके मुँह में जबरन डाले गए थे। उनके अनुसार यह 'हे ईशा-हे ईशा' शब्दों का अपभ्रंश रूप है। नाव चलाते हुए बंगाल के नाविक 'हैय्या-हो' कहते-कहते 'माँझी रे' की धुन छेड़ देते हैं। कोयला खदानों में बड़े-बड़े खूंटे उठा कर ले जाने के लिए खदानों के मलकट्टे अलग से एक विशेष ध्वनि